दवा होगा। दस रुपये !, इस समय पंडित जी को दस रुपये दस लाख जान पड़े।

इतने रुपये वह एक दिन में भंग बूटी में उड़ा दिया करते थे; पर इस समय तो धोले-धोले को मुहताज थे। किसी से उधर मिलने की आशा कहाँ। हाँ, सम्भव है, भिक्षा माँगने से कुछ मिल जाए; लेकिन इतनी जल्द दस रुपये किसी भी उपाय से न मिल सकते थे। आधो घंटे तक वह इसी उधेड़बुन में खड़े रहे। भिक्षा के सिवा दूसरा कोई उपाय न सूझता था, और भिक्षा उन्होंने कभी माँगी न थी। वह चंदे जमा कर चुके थे, एक-एक बार में हजारों वसूल कर लेते थे; पर वह दूसरी बात थी। धर्म के रक्षक, जाति के सेवक और दलितों के उद्धारक बन कर चंदा लेने में एक गौरव था, चंदा लेकर वह देनेवालों पर एहसान करते थे; पर यहाँ तो भिखारियों की तरह हाथ फैलाना, गिड़गिड़ाना और फटकारें सहनी पड़ेंगी। कोई कहेगा, इतने मोटे-ताजे तो हो, मिहनत क्यों नहीं करते, तुम्हें भीख माँगते शर्म भी नहीं आती ? कोई कहेगा, घास खोद लाओ, मैं तुम्हें अच्छी मजदूरी दूँगा। किसी को उनके ब्राह्मण होने का विश्वास न आयेगा। अगर यहाँ उनका रेशमी अचकन और रेशमी साफा होता, केसरिया रंगवाला दुपट्टा ही मिल जाता, तो वह कोई स्वाँग भर लेते। ज्योतिषी बन कर वह किसी धनी सेठ को फाँस सकते थे, और इस फन में वह उस्ताद भी थे; पर यहाँ वह सामान कहाँ, कपड़े-लत्ते तो सब कुछ लुट चुके थे। विपत्ति में कदाचित् बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। अगर वह मैदान में खड़े होकर कोई मनोहर व्याख्यान दे देते, तो शायद उनके दस-पाँच भक्त पैदा हो जाते, लेकिन इस तरफ उनका ध्यान ही न गया। वह सजे हुए पंडाल में, फूलों से सुसज्जित मेज के सामने, मंच पर खड़े हो कर अपनी वाणी का चमत्कार दिखला सकते थे। इस दुरवस्था में कौन उनका व्याख्यान सुनेगा। लोग समझेंगे, कोई पागल बक रहा है। मगर दोपहर ढली जा रही थी, अधिक सोच-विचार का अवकाश न था। यहीं संध्या हो गयी, तो रात को लौटना असम्भव हो जायगा। फिर रोगियों की न जाने क्या दशा हो। वह अब इस अनिश्चित दशा में खड़े न रह सके, चाहे जितना तिरस्कार हो, कितना ही अपमान सहना पड़े, भिक्षा के सिवा और कोई उपाय न था। वह बाजार में जाकर एक दूकान के सामने खड़े हो गये; पर कुछ माँगने की हिम्मत न पड़ी !

दूकानदार ने पूछा , क्या लोगे ?

पंडित जी बोले , चावल का क्या भाव है ?

मगर दूसरी दूकान पर पहुँच कर वह ज्यादा सावधन हो गये। सेठ जी गद्दी पर बैठे हुए थे। पंडित जी आ कर उनके सामने खड़े हो गये और गीता का एक श्लोक पढ़ सुनाया। उनका शुद्ध उच्चारण और मधुर वाणी सुन कर सेठ जी चकित हो गये, पूछा , कहाँ स्थान है ?

पंडित जी -काशी से आ रहा हूँ।

यह कह कर पंडित जी ने सेठ जी को धर्म के दसों लक्षण बतलाये और श्लोक की ऐसी अच्छी व्याख्या की कि वह मुग्ध हो गये। बोले , महाराज, आज चल कर मेरे स्थान को पवित्र कीजिए। कोई स्वार्थी आदमी होता, तो इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेता; लेकिन पंडित जी को लौटने की पड़ी थी। बोले , नहीं सेठ जी, मुझे अवकाश नहीं है। सेठ-महाराज, आपको हमारी इतनी खातिरी करनी पड़ेगी।

पंडित जी जब किसी तरह ठहरने पर राजी न हुए, तो सेठ जी ने उदास होकर कहा , फिर हम आपकी क्या सेवा करें ? कुछ आज्ञा दीजिए। आपकी वाणी से तो तृप्ति नहीं हुई। फिर कभी इधर आना हो, तो अवश्य दर्शन दीजिएगा।

पंडित जी -आपकी इतनी श्रद्धा है तो अवश्य आऊँगा।

यह कह कर पंडित जी फिर उठ खड़े हुए। संकोच ने फिर उनकी जबान बंद कर दी। यह आदर-सत्कार इसीलिए तो है कि मैं अपना स्वार्थ-भाव छिपाये हुए हूँ। कोई इच्छा प्रकट की और इनकी आँखें बदलीं। सूखा जवाब चाहे न मिले; पर श्रद्धा न रहेगी। वह नीचे उतर गये और सड़क पर एक क्षण के लिए खड़े हो कर सोचने लगे , अब कहाँ जाऊँ ? उधर जाड़े का दिन किसी विलासी के धन की भाँति भागा चला जाता था। वह अपने ही ऊपर झुँझला रहे थे , जब किसी से माँगूँगा नहीं, तो कोई क्यों देने लगा ? कोई क्या मेरे मन का हाल जानता है ? वे दिन गये, जब धनी लोग ब्राह्मणों की पूजा किया करते थे। यह आशा छोड़ दो कि कोई महाशय आ कर तुम्हारे हाथ में रुपये रख देंगे। वह धीरे-धीरे आगे बढ़े। सहसा सेठ जी ने पीछे से पुकारा , पंडित जी, जरा ठहरिए।

पंडित जी ठहर गये। फिर घर चलने के लिए आग्रह करने आता होगा। यह तो न हुआ कि एक रुपये का नोट ला कर देता, मुझे घर ले जाकर न जाने क्या करेगा ? मगर जब सेठ जी ने सचमुच एक गिनी निकाल कर उनके पैरों पर रख दी; तो उनकी आँखों में एहसान के आँसू छलक आये। हैं ! अब भी सच्चे धर्मात्मा जीव संसार में हैं, नहीं तो यह पृथ्वी रसातल को न चली जाती ? अगर इस वक्त उन्हें सेठ जी के कल्याण के लिए अपनी देह का सेर-आधा सेर रक्त भी देना पड़ता, तो भी शौक से दे देते। गद्गद कंठ से बोले , इसका तो कुछ काम न था, सेठ जी ! मैं भिक्षुक नहीं हूँ, आपका सेवक हूँ।

सेठ जी श्रद्धा-विनयपूर्ण शब्दों में बोले , भगवान्, इसे स्वीकार कीजिए। यह दान नहीं, भेंट है। मैं भी आदमी पहचानता हूँ। बहुतेरे साधु-संत, योगी-यती देश और धर्म के सेवक आते रहते हैं; पर न जाने क्यों किसी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती ? उनसे किसी तरह पिंड छुड़ाने की पड़ जाती है। आपका संकोच देख कर मैं समझ गया कि आपका यह पेशा नहीं है। आप विद्वान् हैं, धर्मात्मा हैं; पर किसी संकट में पड़े हुए हैं। इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए।

पंडित जी दवाएँ लेकर घर चले, तो हर्ष, उल्लास और विजय से उनका हृदय उछला पड़ता था। हनुमान जी भी संजीवन-बूटी ला कर इतने प्रसन्न न हुए होंगे। ऐसा सच्चा आनंद उन्हें कभी प्राप्त न हुआ था। उनके हृदय में इतने पवित्र भावों का संचार कभी न हुआ था।

दिन बहुत थोड़ा रह गया था। सूर्यदेव अविरल गति से पश्चिम की ओर दौड़ते चले जाते थे। क्या उन्हें भी किसी रोगी को दवा देनी थी ? वह बड़े वेग से दौड़ते हुए पर्वत की ओट में छिप गये। पंडित जी और भी फुर्ती से पाँव बढ़ाने लगे, मानो उन्होंने सूर्यदेव को पकड़ लेने की ठानी है। देखते-देखते अँधेरा छा गया। आकाश में दो-एक तारे दिखायी देने लगे। अभी दस मील की मंजिल बाकी थी। जिस तरह काली घटा को सिर पर मँड़राते देख कर गृहिणी दौड़-दौड़ कर सुखावन समेटने लगती है, उसी भाँति लीलाधर ने भी दौड़ना शुरू किया। उन्हें अकेले पड़ जाने का भय न था, भय था अँधेरे में राह भूल जाने का। दायें-बायें बस्तियाँ छूटती जाती थीं।

पंडित जी को ये गाँव इस समय बहुत ही सुहावने मालूम होते थे। कितने आनंद से लोग अलाव के सामने बैठे ताप रहे हैं ? सहसा उन्हें एक कुत्ता दिखायी दिया। न-जाने किधर से आ कर वह उनके सामने पगडंडी पर चलने लगा। पंडित जी चौंक पड़े; पर एक क्षण में उन्होंने कुत्ते को पहचान लिया। वह बूढ़े चौधरी का कुत्ता मोती था। वह गाँव छोड़ कर आज इधर इतनी दूर कैसे आ निकला ? क्या वह जानता है ? पंडित जी दवा ले कर आ रहे होंगे, कहीं रास्ता भूल जाएँ ? कौन जानता है? पंडित जी ने एक बार मोती कह कर पुकारा, तो कुत्ते ने दुम हिलायी; पर रुका नहीं। वह इससे अधिक परिचय दे कर समय नष्ट न करना चाहता था। पंडित जी को ज्ञात हुआ कि ईश्वर मेरे साथ है, वही मेरी रक्षा कर रहे हैं। अब उन्हें कुशल से घर पहुँचने का विश्वास हो गया। दस बजते-बजते पंडित जी घर पहुँच गये।

रोग घातक न था; पर यश पंडित जी को बदा था। एक सप्ताह के बाद तीनों रोगी चंगे हो गये। पंडित जी की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी। उन्होंने यम-देवता से घोर संग्राम करके इन आदमियों को बचा लिया था। उन्होंने देवताओं पर भी विजय पा ली थी , असम्भव को सम्भव कर दिखाया था। वह साक्षात् भगवान् थे। उनके दर्शनों के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे; किंतु पंडित जी को अपनी कीर्ति से इतना आनन्द न होता था, जितना रोगियों को चलते-फिरते देख कर।

चौधरी ने कहा , महाराज, तुम साक्षात् भगवान् हो। तुम न आ जाते, तो हम न बचते।

पंडित जी बोले , मैंने कुछ नहीं किया। यह सब ईश्वर की दया है।

चौधरी - अब हम तुम्हें कभी न जाने देंगे। जा कर अपने बाल-बच्चों को भी ले आओ।

पंडित जी -हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। तुमको छोड़ कर अब नहीं जा सकता।

मुह्लाओं ने मैदान खाली पा कर आस-पास के देहातों में खूब जोर बाँध रखा था। गाँव के गाँव मुसलमान होते जाते थे। उधर हिन्दू-सभा ने सन्नाटा खींच लिया था। किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इधर आये। लोग दूर बैठे हुए मुसलमानों पर गोला-बारूद चला रहे थे। इस हत्या का बदला कैसे लिया जाए, यही उनके सामने सबसे बड़ी समस्या थी। अधिकारियों के पास बार-बार प्रार्थना-पत्र भेजे जा रहे थे कि इस मामले की छानबीन की जाए और बार-बार यही जवाब मिलता था कि हत्याकारियों का पता नहीं चलता। उधर पंडित जी के स्मारक के लिए चंदा भी जमा किया जा रहा था। मगर इस नयी ज्योति ने मुह्लाओं का रंग फीका कर दिया। वहाँ एक ऐसे देवता का अवतार हुआ था, जो मुर्दों को जिला देता था, जो अपने भक्तों के कल्याण के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर सकता था। मुह्लाओं के यहाँ यह सिध्दि कहाँ, यह विभूति कहाँ, यह चमत्कार कहाँ? इस ज्वलंत उपकार के सामने जन्नत और अखूबत (भातृ-भाव) की कोरी दलीलें कब ठहर सकती थीं ? पंडित जी अब वह अपने ब्राह्मणत्व पर घमंड करनेवाले पंडित जी न थे। उन्होंने शूद्रों और भीलों का आदर करना सीख लिया था। उन्हें छाती से लगाते हुए अब पंडित जी को घृणा न होती थी। अपना घर अँधेरा पा कर ही ये इसलामी दीपक की ओर झुके थे। जब अपने घर में सूर्य का प्रकाश हो गया, तो उन्हें दूसरों के यहाँ जाने की क्या जरूरत थी। सनातन-धर्म की विजय हो गयी। गाँव-गाँव में मंत्र बनने लगे और शाम-सबेरे मन्दिरों से शंख और घंटे की धवनि सुनायी देने लगी। लोगों के आचरण आप ही आप सुधरने लगे। पंडित जी ने किसी को शुद्ध नहीं किया। उन्हें अब शुद्धि का नाम लेते शर्म आती थी , मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करूँगा, पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल एवं पवित्र आत्माओं को शुद्धिके ढोंग से अपमानित नहीं कर सकता।

यह मंत्र था, जो उन्होंने उन चांडालों से सीखा था और इसी बल से वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे। पंडित जी अभी जीवित हैं; पर अब सपरिवार उसी प्रांत में, उन्हीं भीलों के साथ रहते हैं।

अध्यात्म

लज्जा

लज्जा शब्द को समझने की कोशिश करें। क्योंकि शब्द बहुत गहरा है और बहुत पूर्वीय है। पश्चिम की भाषाओं में ऐसा कोई शब्द नहीं है। क्योंकि लज्जा एक पूरब की अपनी अनूठी खोज है। लज्जा को हमने स्त्रैण व्यक्तित्व की आखिरी परम अवस्था माना है।

वेश्या को हम निर्लज्ज कहते हैं, क्योंकि वह शरीर को बेच रही है। शरीर को बेचना निर्लज्ज दशा है। क्योंकि शरीर परमात्मा का मंदिर है, बेचने के लिए नहीं है। यह तो आराधना के लिए है। यह ठीकरों के लिए गंवाने के लिए नहीं है। यह तो परम-धन के पाने की सीढ़ी है। तो जो भी शरीर को बेच रहे हैं, चाहे वेश्याएं हों, और चाहे दुकानदार हों, और चाहे तुम हो, अगर तुम शरीर को बेच रहे हो और ठीकरे कमा रहे हो, तो निर्लज्ज हो।

निर्लज्ज का एक ही अर्थ होता है कि जो शरीर को परमात्मा को खोजने के अतिरिक्त और किसी तरह से बेच रहा है। उसके जीवन में कोई लज्जा नहीं है। तुम वेश्या की तो निंदा करते हो, लेकिन दूसरे लोगों की क्या हालत है? फर्क क्या है? अगर तुम शरीर को बेच रहे हो धन कमाने के लिए, इस संसार में इज्जत कमाने के लिए, तो वेश्या और तुम में फर्क क्या है? वेश्या भी शरीर को बेच रही है धन कमाने के लिए, तुम भी बेच रहे हो शरीर को धन कमाने के लिए।

लज्जा की अवस्था का अर्थ है, शरीर को धन के लिए नहीं बेचना है। वह परमात्मा का मंदिर है। उसमें परमात्मा कभी अतिथि बनेगा। उसे परमात्मा के लिए प्रतीक्षा सिखानी है। और वह प्रतीक्षा निश्चित ही वैसी ही होगी, जैसी प्रेयसी अपने प्रेमी के लिए करती है। और जब प्रेमी पास आता है तो प्रेयसी घूंघट डाल लेती है। छिपती है। प्रेमी के सामने अपने को प्रगट नहीं करती, क्योंकि प्रगट करना तो निर्लज्ज अवस्था है। छिपाती है, अवगुंठित होती है। प्रेमी के लिए प्रतीक्षा करती है, प्रेमी को निमंत्रण भेजती है, जब प्रेमी पास आता है तो अपने को छिपाती है। क्योंकि प्रेमी के सामने प्रकट करना तो अहंकार होगा। सब प्रकट करने की इच्छा एक्जीबिशन, अहंकार है।

परमात्मा के सामने क्या तुम अपने को प्रगट करना चाहोगे? तुम परमात्मा के सामने तो छिप जाओगे, जमीन में गड़ जाओगे। तुम तो परमात्मा के सामने घूंघटों में छिप जाओगे। परमात्मा के सामने अपने को प्रकट करने का भाव तो अहंकार है। वहां तो तुम प्रेयसी की भांति जाओगे, पंडित की भांति नहीं। वहां तो तुम ऐसे जाओगे कि पदचाप भी पता न चले। वहां तो तुम छुपे-छुपे जाओगे। क्योंकि तुम्हारे पास है क्या जो दिखाएं? लज्जा का अर्थ है, है क्या हमारे पास जो दिखाएं? कुछ भी तो नहीं है दिखाने को, इसलिए छिपाते हैं।

इसलिए भारत में जो स्त्री का परम गुण हमने माना है, वह लज्जा है। इसलिए भारत की स्त्रियों में जो एक ग्रेस, एक प्रसाद मिल सकता है, वह पश्चिम की स्त्रियों में नहीं मिल सकता। क्योंकि पश्चिम की स्त्री को कभी लज्जा सिखायी नहीं गयी। लज्जा दुर्गुण मालूम होती है। उसे दिखाना है, प्रदर्शन करना है, उसे बताना है, उसे आकर्षित करना है बता कर। जैसे बाजार में खड़ी है।

पूरब में हमने स्त्री को लज्जा सिखायी है। छिपाना है। इससे घूंघट विकसित हुआ। घूंघट लज्जा का हिस्सा था। फिर घूंघट खो गया। और जैसे ही घूंघट खोया, लज्जा भी खोने लगी। क्योंकि घूंघट लज्जा का हिस्सा था। वह उसका बाह्य अंग था। अब हमारी स्त्री भी प्रकट कर के घूम रही है। वह चाहती है लोग देखें। सज-संवर कर घूम रही है। और जब तुम सज-संवर कर घूम रहे हो, लोग देखें यह भीतर आकांक्षा है, तो तुम बाजार में खड़े हो गए।

नानक कहते हैं, परमात्मा के सामने हमारी लज्जा वैसी ही होगी, जैसी प्रेमी के सामने प्रेयसी की होती है। वह अपने को छिपाएगी। दिखाने योग्य क्या है? इसलिए लज्जा। बताने योग्य क्या है? इसलिए लज्जा। इसलिए घूंघट है।

और ध्यान रखना, जितनी स्त्री लज्जावान होगी, उतनी आकर्षक हो जाती है। जितनी प्रगट होगी, उतना आकर्षण खो जाता है। पश्चिम में स्त्री का आकर्षण खो गया है। खो ही जाएगा। क्योंकि जो चीज बाजार में खड़ी है, उसका आकर्षण समाप्त हो जाएगा।

और परमात्मा के सामने तो हम बेचने को नहीं गए हैं अपने को। और परमात्मा के सामने तो हमारे पास क्या है दिखाने को? इसलिए परमात्मा के सामने तो हम प्रेयसी की तरह जाएंगे। कंपते पैरों से, कि पता नहीं स्वीकार होंगे या नहीं! संकोच से, कि पता नहीं उसके योग्य हो पाएंगे कि नहीं! लज्जा से, क्योंकि दिखाने योग्य कुछ भी नहीं है।

लज्जा बड़ी विनम्र दशा है। और उतनी विनम्रता से कोई उसके पास जाएगा तो ही अंगीकार होगा। और जो भक्त जितना अपने को छिपाता है, उतना आकर्षक हो जाता है परमात्मा के लिए। और जो भक्त अपने को जितना खोलता है और ढोल पीटता है कि देखो मैं पूजा कर रहा हूं, देखो मैं प्रार्थना कर रहा हूं, कि देखो मैं मंदिर जा रहा हूं, कि देखो मैंने कितने जप तप किए, वह उतना ही दूर हो जाता है। क्योंकि यह कोई अहंकार नहीं है, परमात्मा से मिलन एक निरअहंकार चित्त की बात है।